अङ्क-२४
जुलाई-दिसम्बर २०१४

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

जर्मनी में वेदानुशीलन की परम्परा

प्रो.ओम्प्रकाश पाण्डेय

अपनी किशोर-वयस् में मैंने, यह प्रवाद बहुधा सुना था कि हमारे वेदों को जर्मनी वाले उठा ले गए - अब भारत में जो वेद हैं वे वास्तविक नहीं है। जनश्रुति के पूर्वार्द्ध पर ही मन में उस समय अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए थे; जैसे कि वे वेदों को क्यों ले गए ? उन्हें वे कहाँ से प्राप्त हुए ? उनका उन्होंने क्या किया ? उड़ता-उड़ता यह प्रवाद भी कानों में पड़ा कि पाश्चात्य-वैज्ञानिकों ने ये जो बड़े-बड़े आविष्कार किए हैं, ये सब उन्हें वेदों से ही ज्ञात हुए। अन्तिम तथ्य पर आर्यसमाज के उपदेशकों को बहुत बल देते हुए भी देखा - उपदेशकों का आधार महर्षि दयानन्द का सम्भवतः वह कथन था जिसके अनुसार 'वेद सब सत्यविद्याओं की पुस्तक है।'

उपर्युक्त प्रश्नों और अनुश्रुतियों ने ही मेरे मानस में जर्मन-विद्वानों द्वारा किए गए वेदानुशीलन की परम्परा को समझने की इच्छा उत्पन्न की।

वेदाध्ययन वस्तुतः प्राच्य भारतीय विद्यानुशीलन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। जर्मनी में भारतीय विद्याओं के अध्ययन का प्रारम्भ सर्वप्रथम योहान गाटफ्रीड हेर्डेर नामक एक कवि ने किया। इसका समय १७४४ ई. से १८०३ तक है। जार्ज फार्स्टर (१७५४-१७९४ ई.) के द्वारा जर्मन में अनूदित **'अभिज्ञानशाकुन्तल'** की ओर प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे (अथवा गोयथे) का ध्यान हेर्डेर ने ही आकृष्ट किया।

अब तक जर्मनीवासियों ने ओल्ड टेस्टामेण्ट, न्यू ट्रेस्टामेण्ट, प्राचीन यूनानी, रोम तथा ईसाई धर्म की ही पुस्तकों को देखा-परखा था, किन्तु ये उनकी रहस्यात्मक जिज्ञासाओं का शमन करने में धीरे-धीरे अक्षम सिद्ध होती जा रही थीं। वैचारिक स्तर पर ये उन्हें बहुत स्थूल-दृष्टि से लिखी हुई लगीं और जब उन्होंने एक सुदूर एशियायी देश का उत्कृष्ट साहित्य देखा, तो वे इसका अध्ययन करने को आकुल हो उठे। जर्मनी के बौद्धिक जीवन का यह वह काल-खण्ड था, जब वहाँ के सङ्कीर्ण धार्मिक विचारों की शृङ्खला आध्यात्मिक एवं भावात्मक मूल्यों के विकास से छिन्न-भिन्न हो रही थी और तभी, जब समकालीन मान्यताओं के नवीन विकल्प खोजे जा रहे थे, स्थूल के विरुद्ध विद्रोह हो रहा था, उनकी दृष्टि मानवता के उन आदर्शों पर पड़ी, जिनका साक्षात्कार भारत में असङ्ख्य वर्ष पहले ही हो चुका था।

जर्मनी के बुद्धिजीवियों ने संस्कृत-साहित्य को इसी दृष्टिकोण से अपनाया ताकि नए वैचारिक क्षितिज का स्पर्श किया जा सके। उनका संस्कृत-अनुराग मात्र श्रेण्य-साहित्य (Classical Literature) तक ही सीमित न रह सका; शीघ्र ही वे वेदों की ओर भी मुड़े।

कोलब्रुक (१७६५-१८३७ ई.) को एक प्रकार से प्रथम वेदानुशीली कहा जा सकता है, यद्यपि उसकी धारणा थी कि वेद व्याख्येय नहीं हैं, धार्मिक अनुष्ठानों में पाठ मात्र ही उनका सदुपयोग है। प्राचीन भारतीय वेदज्ञ कौत्स ने भी यही विचार व्यक्त किया था - **'अनर्थका हि मन्त्राः'** (निरुक्त)। कोलब्रुक के अनन्तर वेदानुशीलन की चेष्टा फ्रेडरिख रोजेन ने की। इसी तरह फ्रांस में प्राध्यापक युजीन बुरनूफ ने कुछ ऐसे प्रतिभाशाली छात्र तैयार किए, जो अपने युग में प्रमुख वैदिक स्तम्भ बने। बुरनूफ के शिष्यों में फ्रेडरिख मैक्समूलर और रुडोल्फ फोन रॉथ मुख्य थे। मैक्समूलर के नाम से जो भारतीय प्रायः परिचित हैं, किन्तु रॉथ का नाम अधिकांश लोग नहीं जानते। मैक्समूलर जन्मना जर्मन थे, किन्तु उनका कार्य-क्षेत्र जर्मनी से बाहर (इंग्लैण्ड) रहा। उस समय जर्मनी में संस्कृत के प्रति सामान्य जन की क्या धारणा थी ? इसका ज्ञान हमें मैक्समूलर के निम्नलिखित कथन से हो सकता है -

'जर्मनी में जो विद्वान् व्यक्ति संस्कृत-साहित्य का अध्ययन करता है, वह प्राचीनों की ज्ञान-गरिमा एवम् उनके रहस्य-ज्ञान का अधिकारी समझा जाता है। लोग उसके सामने श्रद्धा से सिर झुकाते हैं तथा विद्वानों की श्रेणी में उसका विशेष आदर किया जाता है। लोग समझते हैं कि उसने अनेक अज्ञात रहस्यों का भेदन कर लिया है।'

(- 'इण्डिया ह्वाट केन इट टीच अस' से उद्धृत)

ऋग्वेद का प्रथम बार सम्पादन-प्रकाशन करने के अतिरिक्त उन्होंने भारतीय दर्शन और साहित्य के इतिहास ग्रन्थ रचे, तुलनात्मक भाषाशास्त्र और देवशास्त्र पर भी अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रणयन किया। इनमें प्रतिपादित मैक्समूलर की अनेक मान्यतायें वैसे आज गलत सिद्ध हो चुकी हैं, किन्तु इससे उनका स्वसामयिक महत्त्व कम नहीं किया जा सकता।

रुडोल्फ रॉथ ने सन् १८४६ में वैदिक अध्ययन की परिचायक अपनी प्रथम पुस्तक **'त्सुर लिट्रेचर उण्ठ गेश्खिटे देज वेद'** (वेद के साहित्य और इतिहास के सम्बन्ध में) प्रकाशित की। रॉथ का जो महत्त्वपूर्ण कार्य है, वह **'सेण्टपीटर्सबर्ग संस्कृत- जर्मन महाकोश'** की बड़ी-बड़ी जिल्दों में देखा जा सकता है। इस कार्य का मूल्याङ्कन केवल इसी एक बात से किया जा सकता है कि इसमें अनेक वैदिक शब्दों के अर्थ पहली बार एक भिन्न सन्दर्भ में खोजने का प्रयास किया गया। रॉथ वेदाध्ययन की ऐतिहासिक पद्धति के उद्भावक माने जाते हैं। उक्त महाकोश के सहयोगी सम्पादक थे - आटो फोन बोथलिंक (१८१५-१९०४ ई.)। इस कोश में केवल सायण और महीधर ही नहीं, निरुक्तकार यास्क तक को चुनौती दी गई है। रॉथ ने सायण का पूर्णतया विरोध किया, उनका कथन था - 'Los von Sāyana' (सायण का बहिष्कार करो)। इस प्रकार से वेदाध्ययन की भारतीय-परम्परा को उन्होंने अमान्य घोषित किया। रॉथ का विचार था कि सायण आदि प्राचीन आचार्य भारतेतर भाषाओं और धर्मों को नहीं जानते थे, किन्तु हमारे लिए उनका ज्ञान सुलभ है। अतएव हम तुलनात्मक भाषाशास्त्र और पुराणशास्त्र (Mythology) के परिप्रेक्ष्य में वेदार्थ को अधिक यथार्थ-रूप से जान सकते हैं।'

यद्यपि रॉथ का यह कथन अनेक अंशों में व्यर्थ सिद्ध हुआ, क्योंकि स्वयं रॉथ ने ही वेद-मन्त्रों को समझने में सायण की सहायता ली है। जर्मनी के अधिकांश वेदानुशीलियों ने रॉथ के कथन का अनौचित्य और मिथ्यात्व समझ लिया था, तथापि तत्कालीन साधनों की सीमितता को ध्यान में रखते हुए, रॉथ के परिश्रम की सराहना किए बिना हम नहीं रह सकते।

प्रो. रॉथ के शिष्यों में अनेक प्रतिभाशील और व्युत्पन्न संस्कृतज्ञ हुए, जिनमें चार्ल्स लानमन, अमेरिकी विद्वान् विलियम ह्वाइट ह्विटनी (१८२७-१९९४ ई.), हेनरिरव त्सिमर सीनियर (१८५१-१९१०), रिचर्ड गार्बे (१८५७-१९२७) और के.एफ. गेडनर (१८५२-१९२९) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गेडनर-कृत ऋग्वेद के जर्मन-अनुवाद की, जो अधूरा ही है, उपयोगिता आज भी पाश्चात्य वेद-विद्यार्थियों के लिए असन्दिग्ध-रूप से बनी है। गेडनर ने अपने गुरु रॉथ की परिपाटी पर न चलकर सायण को ही मुख्य आधार माना है, अनुवाद की भूमिका में उदारहृदय से सायण का महत्त्व स्वीकार भी किया है।

सन् १८७६ में, अर्थात्, गेडनर के समकालीन ऋग्वेद के जो अन्य जर्मन-अनुवाद हुए, उनमें हरमन ग्रासमैन (१८०९-१८७७) और लुडविग (१८३२-१९११) के अनुवाद उल्लेख्य हैं। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में ग्रासमैन का ध्वनि-नियम प्रसिद्ध है। ग्रासमैन का अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य है ऋग्वेद-कोश, जिसे लोग **'वोर्टरबुख देज ऋग्वेद'** (vorṭarabukha deja ṛgveda) के नाम से जानते हैं।

अन्य तीन वैदिकसंहिताओं में सामवेद का भी पहली बार सम्पादन जर्मनी में ही हुआ। थियोडार बेनफे (१८०९-१८८१ ई.) ने इसे १८४२ ई. में प्रकाशित कराया। शुक्लयजुर्वेद का प्रकाशन प्राध्यापक अल्ब्रेख्ट वेबर ने १८५२ से ५९ के मध्य कराया। ल्यूपोल्ड फोन श्रोदर (१८५१-१९२० ई.) ने कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणीसंहिता को दो भागों में १८११ से ८६ के मध्य तथा काठकसंहिता को चार भागों में १९०० से १९११ के मध्य सम्पादित कर प्रकाशित कराया। जहाँ तक अथर्ववेदसंहिता का प्रश्न है, इसका सम्पादन १८५५-५६ में प्रा. रॉथ और उनके शिष्य ह्विटनी ने किया। इस संहिता का अनुवाद थियोडार आउफ्रेरव्ट और वेबर ने मिलकर किया, जो बाद में **'इंदिशे स्तूदियन'** (Indische Studien) के नाम से छपना आरम्भ हुआ, यद्यपि यह अधूरा ही रहा। जूलियस ग्रिल ने, जिसका समय १८४० से १९१८ कहा जाता है, और जो ट्यूबिंगेन में अध्यात्मविद्या का प्राध्यापक था, अथर्ववेद के १०० सूक्तों का अनुवाद किया है।

इन विद्वानों के द्वारा सम्पादित-प्रकाशित मन्त्र-संहिताओं के संस्करण उस समय प्रामाणिक रहे हैं। इनमें से अनेक का तो छायाचित्रों के आधार पर प्रकाशन हुआ है।

सम्पादन-अनुवाद के अतिरिक्त जर्मनी में वेदवाङ्मय के विभिन्न पक्षों पर शोध-कार्य भी विपुल परिमाण में हुआ है। ओल्डेनबर्ग ने जिन्हें लोग गृह्यसूत्रों के अनुवादक के रूप में अधिक जानते हैं, वैदिकधर्म पर एक ग्रन्थ लिखा। ए. हिल्लेब्राण्ड्ट् (१८५३-१९२७) ने वैदिक माइथालॉजि (Vedische

Mythologie) की रचना की। ए.ए. मैक्डानेल की वैदिक माइथॉलॉजि की आधारभूत पुस्तक यही है। हिल्लेब्राण्ड्ट् ने ही वेदकालीन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक स्वरूप का परिचय कराने हेतु 'प्राचीन भारतीय जीवन' (Altindische leben) शीर्षक पुस्तक रची।

जर्मनी के वेदानुशीलियों की यह नाम-माला रिचर्ड पिशेल (१८४९-१९०८) और हेनरी ल्यूडर्स का उल्लेख किये बिना अधूरी ही रहेगी। पिशेल अपनी वैदिक शोधों की अपेक्षा प्राकृतभाषाओं के व्याकरण - लेखन के कारण अधिक विख्यात हैं। ल्यूडर्स जैसे एक अध्यवसायी शोधकर्त्ता थे, वैसे ही एक श्रेष्ठ अध्यापक भी। युद्धोत्तर-काल में उनके अनेक शिष्य जर्मनी के प्रमुख संस्कृतज्ञ बने। जीवन की सान्ध्य-वेला में ल्यूडर्स वैदिक देवता वरुण पर शोध कर रहे थे, उनकी असामयिक मृत्यु के कारण वह कार्य अधूरा ही रह गया। अधूरी पाण्डुलिपि को उनके शिष्य एल्सडर्फ ने दो भागों में सम्पादित कर सहेजा और युद्ध के उलट-फेर से बचाया। इसी क्रम में ब्रेस्लाउ के प्राध्यापक शेफ्टेलोवित्स भी उल्लेख्य हैं, जिन्होंने सन् १९०६ में सम्पूर्ण वैदिक-खिलमन्त्रों को अपने अध्ययन का विषय बनाया। 'अपोक्रायफ्रेन देज ऋग्वेद' और जेड.डी.एम.जी. की फाइलें उनके कार्य की साक्षी हैं।

(ख)

आचार्य आपस्तम्ब के अनुसार मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग दोनों का ही नाम वेद है - **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।'** संहिताओं के साथ ही शर्मण्य-मनीषियों का ध्यान ब्राह्मणों की ओर भी गया। ब्राह्मण वे ग्रन्थ हैं जिनकी रचना वेद-मन्त्रों की व्याख्या के लिए हुई। मूलतः ये यज्ञ-विधान के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं और उसी दृष्टि से मन्त्रों का विनियोग बताते हुए उनकी यज्ञपरक व्याख्या इनमें उपलब्ध होती है।

इस दिशा में सर्वप्रथम अग्रसर होने वाले जर्मन-विद्वानों में मार्टिन हाग (१८२७-१८७६), एच. ओर्टेल (१८६८-१९५२) तथा जुलियस एगलिंग (१८४२-१९१८) के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। नार्वे के विद्वान् स्टेन कोनो (१८६७-१९४८) का नामोल्लेख भी यहाँ आवश्यक है, क्योंकि उन्होंने भी अधिकांश कार्य जर्मनभाषा में ही किया है। हाग महाशय ने ऐतरेयब्राह्मण के सम्पादन के साथ ही उसका अँग्रेजी-अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। अनुवाद को स्पष्ट करने के लिए दी गई पाद-टिप्पणियाँ उनके विपुल अध्ययन की परिचायक हैं। प्रारम्भ में जो विस्तृत भूमिका है, वह वेदाटवी में उनके गहन प्रवेश की सूचक है। आज भी उस भूमिका का वेद-विद्यार्थियों के लिए प्रचुर उपयोग असन्दिग्ध है। ऋग्वेद के दोनों ब्राह्मणग्रन्थों ऐतरेय और कौषीतकि का अँग्रेजी में प्रो.ए.बी. कीथ ने भी अनुवाद किया है, लेकिन तुलनात्मक-दृष्टि से देखने पर हाग का अनुवाद बेहतर है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि भारतीय विद्यार्थियों को आँख खोलकर इनका अध्ययन करना चाहिए क्योंकि यज्ञतत्त्व की भारतीय-परम्परा से जर्मनदेशीय और आँग्लविद्वान् दोनों ही अनभिज्ञ हैं। भाषाविज्ञान और तुलनात्मक

पुराकथाशास्त्र का जो इन विदेशी विद्वानों के प्रमुख साधन हैं, वेदार्थ समझने की दृष्टि से उपयोग बहुत सीमित ही है।

जुलियस एगलिंग ने 'सैक्रेड बुक्स ऑव ईस्ट' पुस्तकमाला में **शतपथब्राह्मण** का अनुवाद किया है जो चार खण्डों में है। हर्मन, ओल्डेनबर्ग, जिनका विस्तृत परिचय गृह्यसूत्रों के सन्दर्भ में आकलनीय है, का महत्त्वपूर्ण कार्य **'दी वेल्टांशौयुत्स देर ब्राह्मणटेक्स्टे'** के रूप में प्रसिद्ध है। यह सन् १९१९ में प्रकाशित हुआ।

डच विद्वान् डब्ल्यू. कालान (१८५९-१९३२) मूलतः जर्मनी-निवासी नहीं थे, तथापि उन्होंने अपने अधिकांश ग्रन्थ जर्मनभाषा में ही लिखे हैं। अपने समय में वे भी ब्राह्मणग्रन्थों के अधिकारी विद्वान् माने जाते थे। मार्बुर्ग के विल्हेल्म राउ ने ब्राह्मणग्रन्थों के आधार पर एक इतिहास ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम है **'स्टट उण्ठ गेसेल्लशाफ्ट इम आल्टेन इण्दियेन'** अर्थात् 'प्राचीन भारत में राज्य और समाज'। जर्मनी में ब्राह्मणग्रन्थों के अध्ययन की यह परम्परा श्रीराउ और कार्ल होफ्फमैन के रूप में सुदीर्घकाल तक चलती रही।

वैदिकवाङ्मय के जिस क्षेत्र में अभी तक सबसे कम काम हुआ है, वह है आरण्यक। जर्मनी भी इसका अपवाद नहीं। जर्मनी का बुद्धिजीवी वर्ग सर्वाधिक जिनसे आन्दोलित हुआ, वे उपनिषदों की ही शिक्षायें थीं। उपनिषदों का रहस्य जर्मन-जिज्ञासुओं के लिए पहले ५० उपनिषदों के एक लैटिन अनुवाद के माध्यम से ही उपलभ्य था, जिसे आँकातील ड्यूपर्रां (१७३१-१८०५) ने सन् १८०१-२ में तैयार कर छपाया था। ड्यूपर्रां फ्रांसीसी विद्वान् थे। उनका यह अनुवाद एक फारसी-अनुवाद का रूपान्तर मात्र था। उक्त फारसी-अनुवाद उपनिषदों के भक्त मुगल राजकुमार दाराशिकोह ने सन् १६५६ में किया था।

आर्थर शापनहावर (१७८८-१८६०) जिसका नाम उत्कट उपनिषद्-भक्त के रूप में प्रख्यात है, अपने समय का एक प्रौढ़ दार्शनिक था। वह स्वयं संस्कृत पढ़ नहीं सकता था, तथापि इस भ्रष्ट अनुवाद के माध्यम से उसमें उपनिषद्-दर्शन के प्रति अपार रुचि और आस्तिक्यबुद्धि उपजी। फिर तो भारत की मधुविद्या (उपनिषदों को मधुविद्या भी कहा जाता है।) के प्रतिपादक ये ग्रन्थ उसके जीवन भर के लिए सबसे गहरे मित्र बन गए।

शापेनहावर के अतिरिक्त उपनिषदों पर काम करने वाले जर्मन विद्वानों आटो बोथलिंक, हिल्लेब्राण्ड्ट, योहान्नेस हर्तेल (१८७२-१९५५), एडवर्ड रोअर (१८०५-१८६६) ने एक या अनेक उपनिषदों के अनुवाद किए।

किन्तु जर्मनी में उपनिषदों का जो सबसे अधिक अधिकारी विद्वान् हुआ है, उसका नाम है पाल ड्यूसन (१८४५-१९१९), जिन्हें भारतीय विद्वानों ने अत्यन्त प्रेम के कारण देवसेन नाम दिया है। अपनी विदेश-यात्रा के समय स्वामीविवेकानन्द, प्रा. देवसेन से उनके निवास-स्थान कील में मिले थे। उस समय की एक घटना का उल्लेख किये बिना यह सन्दर्भ अधूरा ही रह जायेगा। तब स्वामीजी देवसेन के

अतिथि थे। एक दिन अपने कमरे में स्वामीजी अध्ययन में मग्न थे, तभी प्रा. देवसेन वहाँ आये। स्वामीजी इतने तल्लीन थे कि वे देवसेन का आगमन और अपने निकट उनकी उपस्थिति न जान सके। प्राध्यापक ने उन्हें सजग किया, तब कहीं वे प्रकृतिस्थ हुए। देवसेन ने साश्चर्य जिज्ञासा की - 'क्या वास्तव में इतना एकाग्रचित्त होना सम्भव है ?' प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने कहा - 'क्यों नहीं ?' प्रा. देवसेन को अपने प्रश्न का उत्तर ही नहीं, उपनिषदों की रचना का रहस्य भी उसी क्षण समझ में आ गया। ड्यूसन ने ६० उपनिषदों का अनुवाद किया, आज इसका चतुर्थ संस्करण उपलब्ध है। उनका **'दी फिलॉसफी देर उपनिषद्स'** नामक ग्रन्थ सन् १८९९ में प्रकाशित हुआ।

जर्मनी में उपनिषदों पर हुए अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में हरमन ओल्डेनबर्ग का **'दी लेअरे देर उपनिषदेन उण्ठ दी आनफांगे देज बुद्धिज्मुस'** (उपनिषदों के सिद्धान्त और बौद्धधर्म का उद्भव) ग्रन्थ सन् १९९५ में छपा। हरमन जैकोबी (१८५०-१९३७) का उपनिषद्-सम्बन्धी विख्यात ग्रन्थ **'दी एण्टविक्लुंग देर गाटेसिडी बी देन इण्टर्न'** १९२३ में प्रकाशित हुआ।

(ग)

विदेशों में भारतीय भाषाओं के प्रचार का आंशिक श्रेय ईसाई-मिश्नरियों को भी है। यद्यपि ये उपलब्धियाँ बहुत क्षीण हैं तथापि उनका प्रारम्भिक प्रयास के रूप में कम महत्त्व नहीं है। वेद के उपरान्त उसके छह अङ्ग हैं - व्याकरण, ज्योतिष, कल्प, निरुक्त, शिक्षा और छन्द।

जर्मनी में संस्कृत-व्याकरण का सामान्य परिचय कराने वाली प्रारम्भिक पुस्तकें हेनरिख रॉथ और योहान एर्न्स्ट हन्क्स लेडेन ने लिखी। हन्क्स लेडेन सन् १६९९ में भारत आये थे।

फ्रेन्त्स बॉप (१७९१-१८६७) को तुलनात्मक भाषाशास्त्र का जनक माना जाता है। जर्मनी के मैन्त्स् नामक स्थान में जन्मे बॉप की संस्कृत में गहरी रुचि थी। उन्होंने अपना प्रबन्ध **'यूबेर देस कन्जुगेशन सिस्टेम देर संस्कृत स्प्राखे इन फेरलेश्युङ्ग मिट येनेन देर ग्रीखीशेन, लैटीनिशेन, परसिशेन, उण्ठ जर्मनिशेन स्प्राखे। निब्स्ट एपीसोडेन देज रामायण उण्ठ महाभारत गिनावेन मेट्रीशेन यूबरजेटजुंगेन आउस देम ओरीजनेल टेक्स्टे उण्ठ आइनीगेन आब्सीनिटेन आउस देन वेदास'** १८१६ में लिखा था। उस समय बॉप की अवस्था केवल २५ वर्ष थी। स्मरणीय है कि यह मत ही तुलनात्मक भाषाशास्त्र का मूल आधार है।

सन् १८२० में बॉप ही बर्लिन विश्वविद्यालय में संस्कृत-प्राध्यापक के रूप में नियुक्त हुए थे। यह बॉन के बाद जर्मनी में भारतीयविद्या के अध्ययन का दूसरा बड़ा प्रतिष्ठान था।

आटो बोथलिंक ने पाणिनीय-अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय का सटीक सम्पादन १८३९ में ही कर लिया था, परन्तु सम्पूर्ण पाणिनीयव्याकरण का सुबोध टिप्पणियों के साथ अनुवाद १८८७ में प्रकाशित हुआ। कात्यायन के वार्तिकों और पातञ्जलमहाभाष्य के सहित पाणिनीयव्याकरण के अध्ययन की यह परम्परा जर्मनी में उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। अल्ब्रेख्ट वेबर, थियोडार गोल्डस्टकर (१८२१-१८७२),

एफ. कीलहार्न (१८४०-१९३९) और आर.ओ. फ्रांके (१८६२-१९२८) के नामों का उल्लेख इस दृष्टि से समीचीन होगा।

पाश्चात्यपद्धति से रचे गये संस्कृत-व्याकरणों में **'एलीमेण्टर बुख देर संस्कृत स्प्राखे'** महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि अपने प्रकार का यह पहला प्रयास नहीं है। इसकी रचना एडल्फ स्टेन्त्स्लर (१८०७-१८८७) ने की थी। कीलहार्न का संस्कृत-व्याकरण भी बहुत लोकप्रिय है। इसकी रचना कीलहार्न ने भारतीय-विद्यार्थियों के उपयोगार्थ की थी। आज भी यह प्राप्य है। वैदिकोत्तरकालीन संस्कृत का व्याकरण मूल-रूप से जेकब वाकरनागेल (१८५३-१९३८) ने रचा - **'आलतिन्दिशे ग्रामातीक'**। कादम्बरीकार बाणभट्ट की भाँति वाकरनागेल भी अपने जीवन में उक्त व्याकरणग्रन्थ को पूर्ण न कर सके। वाकरनागेल के निधन के उपरान्त उनके द्वारा सङ्कलित सामग्री के आधार पर अल्फ्रेड डेब्रूनर (१८८४-१९५८) ने यह काम जारी रखा और अब तक इसके तीन भाग प्रकाशित हो चुके हैं। डेब्रूनर की भी असमय में ही मृत्यु हो जाने के कारण कार्य को ठेस तो अवश्य पहुँची, परन्तु वह रुका नहीं।

वेदाङ्ग-व्याकरण के प्रसङ्ग में जैकोबी, पिशल और जीगर के पालि-प्राकृत व्याकरणों का उल्लेख अनावश्यक ही होगा।

वेदाङ्गों में व्याकरण के बाद दूसरा स्थान ज्योतिष का है। व्याकरण वेद का मुख है और ज्योतिष नेत्र -

मुखं व्याकरणं तस्य ज्योतिषं नेत्रमुच्यते।

जर्मनी में वेदाङ्गज्योतिष का अनुशीलन जिन विद्वानों ने किया उनमें हर्मन जैकोबी, ए. वेबर और जार्ज फ्रेडरिख विलियम थिबो के नाम विशेष-रूप से उल्लेख्य हैं।

वेबर ने वराहमिहिर के **'लघुजातक'** का जो सम्पादन और अनुवाद किया था उसे पूर्ण किया जैकोबी ने। १८९३ में जैकोबी ने ज्योतिष के साक्ष्यों के आधार पर वेद का काल-निर्णय करने का प्रयास किया। उनके अनुसार वेदों की रचना ५४००-२५०० वर्ष ईस्वी पूर्व हुई। उसके पूर्व पाश्चात्यविद्वान् वेदों को इतना भी प्राचीन मानने को तत्पर न थे। इस विषय में पहल मैक्समूलर ने की थी। उन्होंने वेदों को ईसा से १२०० वर्ष पहले रचा गया बतलाया था। मैक्समूलर का यह कथन निराधार होते हुए भी पाश्चात्यविद्वानों के मनो-मस्तिष्क में पूर्वाग्रह बनकर जम गया था। हालाँकि बाद में मैक्समूलर ने स्वयं अपने कथन की असारता समझ ली थी। यह एक विलक्षण बात है कि ठीक उसी वर्ष लोकमान्य तिलक भी उसी आधार से उसी निष्कर्ष पर पहुँचे जिस पर जैकोबी पहुँच चुके थे। तिलकजी ने इसे स्वयं ही अपने ग्रन्थ **'आर्कटिक होम इन दि वेदाज'** में स्वीकृति दी है - 'Naturally enough these results were at first received by scholars in a special spirit. But my position was strengthened when it was found that Dr. Jacobi of Bonn had independentaly - arrived at the same conclusion.'

डॉ. थिबो ने भी वराहमिहिर तथा ज्योतिषवेदाङ्ग के अन्य अनेक विषयों पर अनेक शोधलेख प्रकाशित कराये थे। वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, काशी में बहुत दिन तक प्राचार्य पद पर भी रहे थे।

कल्प - वैदिक कल्पसूत्रों के चार भेद हैं - १. श्रौतसूत्र, २. गृह्यसूत्र, ३. शुल्बसूत्र और ४. धर्मसूत्र। श्रौतसूत्रों में ब्राह्मणग्रन्थों के आधार पर विविध यज्ञों, उनकी विधि आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। अल्फ्रेड हिल्लेब्राण्ड्ट ने **'दस आलटिण्डिशे न्यू उण्ठ फोल्लमोण्ठ साप्फर'** (प्राचीन भारत में दर्शपूर्णमास याग) नामक श्रौतग्रन्थों पर आधृत उत्कृष्ट ग्रन्थ १८७९ ई. में लिखा। इसी वर्ष श्रौतसूत्रों पर ही एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य भी उन्होंने सम्पन्न किया।

ओल्डेनबर्ग का नाम ऊपर आ चुका है, स्टेन्टस्लर का भी। ये नाम गृह्यसूत्रों पर कार्य करने वालों में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। पहले स्टेन्त्स्लर ने कुछ गृह्यसूत्रों का जर्मन अनुवाद किया था, उसके बाद ओल्डेनबर्ग ने अँग्रेजी में। **'सैक्रेंड बुक्स ऑव ईस्ट'** के गृह्यसूत्र-खण्ड में गृह्यसूत्रों का जो अनुवाद मिलता है, वह ओल्डेनबर्ग का ही किया हुआ है। यद्यपि इन अनुवादों में पदे-पदे त्रुटियाँ हैं, जैसे 'पारस्करगृह्यसूत्र' का एक प्रसङ्ग है - छह अर्घ्य (अर्घ पाने के योग्य) होते हैं - आचार्य, ऋत्विक्, वैवाह्य, स्नातक, प्रिय और राजा। इनमें 'वैवाह्य' का अर्थ हरिहर आदि सभी प्राचीन भारतीय भाष्यकारों ने 'जामाता' किया है जबकि ओल्डेनबर्ग ने श्वशुर किया है। परम्परा द्वारा भी जामाता अर्थ ही ठीक है, क्योंकि भारत में होने वाले विवाहों में से, किसी में भी श्वशुर को अर्घ्य नहीं दिया जाता है। सबमें ही अर्घ पाने का अधिकारी जामाता ही है।

अन्य दृष्टियों से इन अनुवादों का अपना महत्त्व है। इन गृह्यसूत्रों में हिन्दू-समाज की वह सांस्कृतिक-निधि सञ्चित है, जो हमारी जीवन-सुषुम्ना रही है।

शुल्बसूत्र वे ग्रन्थ हैं जिनमें यज्ञवेदी की नापें बतालाई गई हैं। इन्हीं शुल्बसूत्रों के अध्ययन के उपरान्त डॉ. थिबो की यह दृढ धारणा बनी थी कि ज्यामिति (geometry) का प्रौढ़ज्ञान भारतीयों को अत्यन्त प्राचीनकाल से ही था। डॉ. थिबो ने ही इन पर कुछ काम भी किया था।

धर्मसूत्रों के क्षेत्र में जार्ज ब्यूहलर ने मनुस्मृति, आपस्तम्बसूत्र (१८७१ में) और गौतमधर्मसूत्र के जर्मन अनुवाद किए। जुलियस जॉली (१८४९-१९३२) ने नारद और बृहस्पतिस्मृतियों के बड़े प्रामाणिक अनुवाद किए। धर्मशास्त्रों पर काम करने वाले अन्य जर्मन-विद्वानों में योहान जेकब मेटर (१८७०-१९३९), बर्नहार्ड ब्रेलोअर (१८९४-१९४७) के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

निरुक्त के बिना वेद-मन्त्रों का अर्थ समझना असम्भव है। निरुक्त पर काम करने वाले जर्मन-भारतविद्याविदों में **रुडोल्फ फोन रॉथ** (१८२१-१९९५) का नाम प्रमुख है । वेदाध्ययन की ऐतिहासिक-पद्धति के उद्भावक रॉथ ने यास्कीय निरुक्त को एक सीमा तक ही मान्य किया।

शिक्षा-वेदाङ्ग की दिशा में **ऋक्प्रातिशाख्य**, सामतन्त्र, शुक्लयजुःप्रातिशाख्य आदि ग्रन्थों का सर्वप्रथम सम्पादन भी जर्मन-विद्वानों ने ही किया। पहले ऋक्प्रातिशाख्य का सम्पादन मैक्समूलर ने

किया, बाद में मङ्गलदेव शास्त्री ने। अथर्वप्रातिशाख्य भी पहली बार जर्मनी में ही छपा। बाद में डॉ. सूर्यकान्त ने इसे भारत में छपाया।

जर्मनी में भारतीय विद्याओं पर जो कार्य हुआ, उसे पूर्णता के साथ यहाँ प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है; वास्तव में उक्त विवरण तो उसका एक सङ्क्षिप्त चित्र मात्र है। अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों का यहाँ अत्यन्त सङ्क्षेप में ही उल्लेख हो पाया है। सम्भव है, अनेक बातों का समावेश यहाँ न हो पाया हो, किन्तु इस वृत्त से इतना स्पष्ट है कि जर्मनी में अद्यावधि वेदविद्या की सम्पूर्ण शाखा-प्रशाखाओं पर पर्याप्त कार्य हुआ है और हो रहा है।

जर्मनी में वेदाध्ययन की यह परम्परा अभी जीवित है, जाग्रत् है। कार्यसातत्य का अनुमान केवल इसीसे लगाया जा सकता है कि सम्प्रति भी जर्मनी में भारतीय-विद्या के अनेक संस्थान हैं जिनमें अनुभवी प्राध्यापकों एवं निदेशकों की देखरेख में वेद और संस्कृत की अन्य शाखाओं (मध्यकालीन तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं) पर छात्र अध्ययन एवं शोध में निरत हैं। सन् २००० में अपनी बर्लिन-यात्रा में मैंने स्वयं बर्लिन की फ्री युनिवर्सिटी के भारतीय विद्या संस्थान में **जैमिनीयब्राह्मण** का मलयालम-लिपि में उपलब्ध हस्तलेखों के आधार पर सम्पादन-प्रकाशन कार्य देखा था।

प्रो. ओम्प्रकाश पाण्डेय

बी-१/४, विक्रान्त खण्ड,
गोमती नगर, लखनऊ २२६०१०